Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
October to December 2025, E-Journal, Vol. I, Issue LII (52), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

मनीषा कुलश्रेष्ठ का उपन्यास त्रिमाया: मातृ सत्ता और इकोफेमिनिज्म का जीवंत दस्तावेज

हिमांशु नागदा* डॉ. विजयलक्ष्मी पोद्दार**

* शोधार्थी (हिंदी) तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर (म.प्र.) भारत
** प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (हिंदी) एम.के.एच.एस गुजराती गर्ल्स कॉलेज, इंदौर (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – उपन्यास त्रिमाया मातृवंशी समुदायों की सामाजिक संरचनाओं, स्त्री-केन्द्रित सांस्कृतिक परंपराओं और प्रकृति-मानव अंतर्संबंधों का विश्लेषणात्मक रूप से अध्ययन प्रस्तुत करता है। यह कृति हाथी-समूह की प्राकृतिक जीवन-व्यवस्था से लेकर खासी तथा नायर समाज की मातृसत्तात्मक प्रणालियों तक एक वैचारिक अनुक्रम निर्मित करती है, जिसके माध्यम से मातृसत्ता के विविध रूपों, वंशानुक्रम, सामुदायिक नेतृत्व और सांस्कृतिक स्मृतियों का तुलनात्मक परीक्षण संभव होता है। उपन्यास इको-फेमिनिज्म की अवधारणाओं विशेषत: स्त्री और प्रकृति के पारस्परिक सह-निर्भर संबंध को साहित्यिक और समाजशास्त्रीय दृष्टि से नए आयाम प्रदान करता है। माया, सोपान और माइया मार्गरीटा जैसे पात्रों के माध्यम से यह कृति व्यक्तिगत अनुभवों को व्यापक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में रूपांतरित करती है तथा मातृसत्ता के विघटन और पितृसत्ता के उभार की प्रक्रियाओं को चिन्हित करती है। इस प्रकार त्रिमाया मातृसत्ता एवं इको-फेमिनिज्म के अध्ययन हेतु एक प्रासंगिक साहित्यिक दस्तावेज के रूप में उभरता है।

शब्द कुंजी – मातृसत्ता, इकोफेमिनिज्म, स्त्री-नेतृत्व, प्रकृति, समुदाय, पर्यावरण।

प्रस्तावना – मानव सभ्यता के इतिहास में समाज का स्वरूप प्राय: पुरुष-प्रधान रहा है, और भारत भी इस परंपरा से अछूता नहीं है। किंतु इतिहास के प्रवाह में कुछ ऐसी संस्कृतियाँ और समुदाय भी विद्यमान रहे हैं जिन्होंने इस प्रवृत्ति को चुनौती दी है और स्त्री को समाज के केंद्र में स्थापित किया है। जनजातीय और आदिम समाज इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि वे अतीत और वर्तमान के बीच सेतु का कार्य करते हुए हमें यह संकेत देते हैं कि सामाजिक संरचना का विकास केवल पितृसत्तात्मक आधार पर ही नहीं हुआ है, बल्कि मातृ प्रधान व्यवस्थाएँ भी मानव जीवन का अभिन्न हिस्सा रही हैं। विश्व के विभिन्न भूभागों में आज भी ऐसे मातृसत्तात्मक समाज जीवंत हैं, जहाँ सदियों से स्त्रियाँ राजनीति, अर्थव्यवस्था और व्यापक सामाजिक ढाँचे का संचालन करती आई हैं और वंश परंपरा माता के नाम से आगे बढ़ती है। विश्व पटल पर यदि दृष्टि डालें तो मातृ सत्ता की झलक विभिन्न महाद्वीपों में दिखाई देती है। मिनांगकाबाउ दुनिया के सबसे बड़े मातृ वंशीय समाजों में से एक है, जिसमें संपत्ति और वंशानुक्रम महिलाओं के माध्यम से होता है। चीन की मोसुओ जनजाति, जिसकी जनसंख्या लगभग चालीस हजार आँकी जाती है, इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। यह समाज बौद्ध धर्म का अनुयायी होते हुए भी अपनी विशिष्ट परंपराओं से अलग पहचान बनाए हुए है, जहाँ विवाह का प्रचलित स्वरूप अनुपस्थित है, किंतु परिवार और समुदाय का संचालन स्त्रियों के नेतृत्व में होता है। इसी प्रकार कोस्टा रिका का ब्रिब्रि समाज, जिसकी जनसंख्या मोसुओ की आधी मानी जाती है, भी मातृ प्रधान परंपरा का संवाहक है, जहाँ स्त्रियों को न केवल उत्तराधिकार का अधिकार प्राप्त है, बल्कि उन्हें समाज की गरिमा और सम्मान की सर्वोच्च प्रति मूर्ति भी माना जाता है। इसी प्रकार अफ्रीका के अकान, उत्तर अमेरिका की कुछ आदिवासी जनजातियाँ तथा यूरोप और एशिया के सीमांत समाज हमें यह दर्शाते हैं कि मातृ सत्ता केवल अपवाद नहीं, बल्कि सामाजिक विकास का एक वैकल्पिक और ऐतिहासिक रूप है।

मार्क्सवादी विचारक फ्रेडरिक एंगल्स मातृ सत्ता के अवसाद का कारण निजी संपत्ति को मानते हैं। उनके अनुसार 'मातृ सत्ता का विनाश नारी जाति की विश्व ऐतिहासिक महत्व की पराजय थी। अब घर के अंदर भी पुरुष ने अपना आधिपत्य जमा लिया। नारी पदच्युत कर दी गई। वह जकड़ दी गई। वह पुरुष की वासना की दासी, संतान उत्पन्न करने का एक यंत्र मात्र बन कर रह गई।'[1] तो मातृ सत्ता की अवधारणा की अविश्वासी गर्दा लर्नर, अपनी पुस्तक 'क्रीऐशन ऑफ पैट्रीआकी' में वह लिखती हैं,'I am defining matriarchy as the mirror image of patriarchy. Using that definition, I would conclude that no matriarchal society has ever existed.'[2] अर्थात मातृ सत्ता और मातृ वंशीय दोनों अलग बिंदु हैं। मातृ वंश में स्त्री एवं पुरुष दोनों को समान दर्जा दिया जाता हैं। मातृ सत्ता का कोई अस्तित्व नहीं। मनीषा कुलश्रेष्ठ ने भी मातृसत्ता को इस प्रकार परिभाषित किया है, 'मातृसत्ता बहुत मोहक और यूटोपियन शब्द है.... नवपाषाण युग में जब 'परिवार' संस्था अपने प्रारम्भिक चरण में होगी तो इसकी स्थापना एक समूह के रूप में सुरक्षा, आवास और भोजन के लिए स्त्री ने की होगी। इसलिए उनके लिए मातृ के साथ 'सत्ता' शब्द का अर्थ शासन नहीं सहयोग रहा है। जबकि पितृसत्ता के साथ ऐसा नहीं है।'[3] 'मातृसत्ता क्या है? यह महज पितृसत्ता का महिला संस्करण नहीं है। एक मादा मुखिया स्वतन्त्र होती है, स्वायत्ता होती है। वह केवल कुल को पोषण और सुरक्षा ही नहीं देती वह मजबूत पारिवारिक बन्धन बनाती है। मातृसत्ता में मुखिया पद के लिए खूनी लड़ाइयाँ नहीं होतीं। सुदीर्घ अनुभव का स्वीकरण होता है, शेष सब उसे सहयोग देती हैं, सहायक होना यहाँ अधीन होना नहीं है।'[4]

भारत की सांस्कृतिक विविधता में भी मातृसत्तात्मक परंपराएँ विशेष स्थान रखती हैं। संपूर्ण उप महाद्धीप की व्यापक संरचना यद्यपि पितृसत्तात्मक है, किंतु कुछ समुदायों ने अपने सांस्कृतिक अस्तित्व में मातृ वंशीय परंपराओं को जीवित रखा है। उत्तर-पूर्व के खासी, जयंतिया और गारो समुदाय आज भी मातृ वंशीय परंपरा को जीवंत किए हुए हैं। उपन्यास के अंतर्गत खासी समुदाय की स्त्री के लिए कहा गया है, 'लॉन्ग जैद ना लोआ किन्थेई', वंश की गिनती माँ से ही शुरू होती है। और ऐसा नहीं है कि औरतें महारानी बन के रहती हैं बल्कि उन्हें ज्यादा काम करना पड़ता है।'[5] खासी समाज में सबसे छोटी बेटी को परिवार की संपत्ति और परंपरा का उत्तराधिकारी माना जाता है, जबकि गारो समाज में स्त्री की भूमिका पारिवारिक सीमाओं से आगे बढ़कर सामाजिक निर्णयों में भी महत्वपूर्ण होती है। इसी प्रकार दक्षिण भारत में केरल का नायर समुदाय लंबे समय तक मातृसत्तात्मक संरचना के लिए प्रसिद्ध रहा है। इसमें मरुमक्कत्तयम व्यवस्था द्धारा वंश और संपत्ति का उत्तराधिकार मातृ रेखा से आगे बढ़ता था। तटीय कर्नाटक के बंट समुदाय में भी ऐसी ही मातृ वंशीय व्यवस्थाओं का इतिहास मिलता है, जहाँ परिवार और संपत्ति का केंद्रीकरण स्त्रियों के माध्यम से होता रहा। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि मातृ प्रधान परंपरा किसी एक भूभाग तक सीमित नहीं रही, बल्कि यह विश्व-सभ्यता के विकास का साझा अध्याय है।

भारतीय दर्शन के प्राचीन ग्रंथों में इकोफेमिनिज्म संकल्पना के अंश किसी न किसी रूप में मिलते रहे हैं। अथर्ववेद संहिता में यह श्लोक देखे, 'यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं, यास्त ऊर्ज्जस्तन्व: संबभूवु:। तासु नो धेह्यभि न: पवस्व माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:।'[6] अर्थात 'हे पृथ्वी माता! जो आपके मध्यभाग और नाभिस्थान हैं तथा आपके शरीर से जो पोषणयुक्त पदार्थ प्रादुर्भूत होते हैंय उसमें आप हमें पवित्रता प्रदान करें। यह धरती हमारी माता है और हम सब उसके पुत्र हैं।' मनुष्य पृथ्वी को माता तथा स्वयं को उसका अंश अथवा पुत्र मानता था।

'इकोफेमिनिज्म' के अंतर्गत पृथ्वी तथा स्त्री के प्रति शोषण को एक दृष्टि से देखा जाता है। नारी का संबंध प्रकृति के प्रत्येक तत्वों से जुड़ा है। अर्थात सती प्रथा, दहेज समस्या, भ्रुण हत्या, बलात्कार, बाल विवाह इत्यादि स्त्री विरोधी होने के साथ ही प्रकृति विरोधी भी हैं। प्रमिला के. पी. लिखती हैं, 'पारिस्थितिकीय स्त्रीवाद व्यापक जैविक लोकतंत्र का भी चिंतन है, जिसमें सिद्धांत से बढ़कर आचरण का महत्व है। यह प्रकृति के सभी अवयवों के महत्व को अख्तियार करता है। इसलिए यह जीव-जंतुओं व प्रकृति-तत्वों के अंतर्सबंधों की जाँच करता है, आपसी विनिमय का विश्लेषण करता है, किसी एक पक्ष के स्वामित्व या महत्व को ठुकराता है।'[7] तो वहीं कैरेन जे. वॉरेन ने 'इकोफेमिनिज्म: हिस्टोरिक एंड इंटरनेशनल इवोल्यूशन' में इकोफेमिनिज्म के बारे में बताया है, 'Ecofeminism is a movement that sees a connection between the exploitation and degradation of the natural world and the subordination and oppression of women.'[8]

हिंदी साहित्य में उपन्यास केवल कहानी कहने का माध्यम नहीं रहा है, बल्कि वह समाज, संस्कृति और विचारधाराओं के गंभीर विमर्श का भी मंच रहा है। इक्कीसवीं सदी में यह प्रवृत्ति और भी गहरी हुई है जहाँ साहित्यकार केवल भावनाओं का चित्रण करने तक सीमित नहीं रहते, बल्कि सामाजिक संरचनाओं और विभिन्न विचारधारा के प्रतिमानों को चुनौती भी देते हैं। विधा की इस समकालीन पंक्ति में मनीषा कुलश्रेष्ठ का नाम उन रचनाकारों में लिया जाता है जिन्होंने न केवल अपनी कथा-दृष्टि से नई भूमि पर अधिकार किया है बल्कि स्त्री-चेतना को वैचारिक गहराई भी प्रदान की है। त्रिमाया उनका नवीन उपन्यास है, जो प्रकाशित होते ही चर्चाओं के केंद्र में आ गया। 'स्त्री वर्ग की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संरचना का भविष्य क्या रहेगा, यदि संसार केवल स्त्रियों का हो?' इस कृति का मूल प्रश्न कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है। यह प्रश्न जितना कल्पनाशील है, उतना ही वैचारिक दृष्टि से जटिल भी। पी सी जोशी ने बताया, 'इस उपन्यास में यह बड़ी स्पष्टता के साथ आया है कि भारतीय समाजों की मातृसत्तात्मक व्यवस्थाएँ किस तरह से पितृसत्तात्मक व्यवस्था में बदलती चली गयीं, इस बदलाव के बावजूद यह ठोस तथ्य इस उपन्यास में आया है कि खासी और नायर समुदाय की महिलाएँ भारत में किसी भी विशिष्ट पितृसत्तात्मक समाज की महिलाओं की तुलना में अधिक सशक्त हैं।'[9] यह उपन्यास मातृ सत्ता, इको-फेमिनिज्म और भारतीय समाज की सांस्कृतिक स्मृतियों के मध्य एक ऐसा संवाद रचता है जो न केवल साहित्यिक दृष्टि से, बल्कि वैचारिक और शोधपरक दृष्टि से भी महत्तवपूर्ण है।

त्रिमाया उपन्यास की संरचना चार अध्यायों विलक्षण माया, मायाविडु, सुनहरे तारों के पुल रू माइया मार्गरीटा और त्रिमाया के माध्यम से निर्मित होती है। ये अध्याय कथा कहने के साधन मात्र नहीं, बल्कि ऐसे विमर्श-स्तर हैं जहाँ मातृसत्ता, प्रकृति, स्त्री-अनुभूति और सांस्कृतिक निरंतरता पर विचार बनने लगते हैं।

उपन्यास का आरंभ जिस जंगल और हाथी-समुदाय के प्रसंगों से होता है, वहाँ मातृसत्ता केवल मानव-समाज की अवधारणा नहीं हैं, यह प्रकृति के कई जीव-समूहों में एक सुगठित सामाजिक संरचना के रूप में विद्यमान है। लेखिका हाथी समुदाय को मनुष्य के समान भावनात्मक, सामाजिक एवं संज्ञानात्मक क्षमताओं वाला प्राणी प्रस्तुत करती हैं। दोनों के जीवनानुभवों को समानांतर रखे तो संवेदना, स्मृति, परिवार, शोक, उत्सव, संकट प्रबंधन जैसी वृत्तियाँ मनुष्य मात्र की विशेषताएँ नहीं हैं। हाथियों की भी है। उल्लेखित है कि 'तुम लोगों की तरह ही हम भी अपने दिवंगतों का शोक मनाते हैं और नवजन्मों का उत्सव। हमारी अपनी खूब पुरानी समृद्ध भाषा है। हम अपने होने का इतिहास जानते हैं। हम खुद को पहचानते हैं। हम अपने अतीत, वर्तमान और भविष्य का अन्तर जानते हैं। हम याद रखते हैं, जीते हैं और आगत निर्धारित करते हैं और उसकी चिन्ता भी करते हैं। हम बखूबी जान रहे हैं कि हमारे साथ क्या हो रहा है। हम मनुष्यजनित खतरे को भाँप रहे हैं, मगर हम उनको भी पहचानते हैं जो हमारे अस्तित्व के लिए सहायक हैं।'[10] हाथियों के समूह में मातृ-नेतृत्व, सामूहिक स्मृति, पारस्परिक सहयोग, खतरे की पहचान और संसाधन-साझेदारी जैसे तत्तव यह संकेत देते हैं कि मातृसत्ता एक जैव-मानविकी ढाँचा है, जो सह-अस्तित्व और संरक्षण को प्राथमिकता देता है। किंतु कुछ ऐतिहासिक साक्ष्य भी इंगित करते है कि मानव-हाथी संबंध मूलत: संघर्षमूलक रहे हैं। उपन्यास में जंगल के पिता यानी वापी दा का यह कथन स्पष्ट करता हैं, 'मैं मानता हूँ हाथियों और मनुष्य का आपसी संघर्ष आज से नहीं प्राचीन काल से होता आ रहा है। छठी या पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व में किसी समय लिखे गये गजशास्त्र में इसका जिक्र किया गया है। रोमपाद के शासनकाल के दौरान बड़े-बड़े हाथी दलों ने फसल लूटने के चक्कर में समूचे अंग राज्य को नष्ट कर दिया था। फिर मनुष्य तो मनुष्य है उसने हाथियों को युद्ध और बोझ उठाने वाले जानवर के रूप में पकड़ना शुरू किया। जाल और लोहे के कीलकाँटे बिछाकर, गड्ढे

खोदकर। बस तभी से दोनों में संघर्ष जारी है। मगर ज्यादा कीमत हाथी ने चुकाई है। वरना वे हमसे अधिक होते।'[11] परिणामस्वरूप यह असममित संघर्ष मानव हितों की प्रधानता तथा हाथियों पर निरंतर बढ़ते दमनात्मक दबाव को उजागर करता है।

उपन्यास में जलदापाराद्दहासीमारा का जंगल, तीस्ताद्दतोरसा का भूगोल इको-फेमिनिज्म के इस सिद्धांत को पुष्ट करते हैं कि प्रकृति और स्त्री-केन्द्रित व्यवस्थाएँ परस्पर जुड़ी प्रणालियाँ हैं, जिन्हें दमन या हस्तक्षेप सबसे पहले विघटित करता है। मातृसत्ता के पुनर्स्थापन में यदि भविष्य में कभी पितृसत्ता अपनी सीमाओं के बोझ तले बिखरने लगेगी और मनुष्य अपने ही संघर्षों में विश्व को चकनाचूर करने लगेगा, तब एक नए सामाजिक ढाँचे, एक नई सत्ता की तलाश अनिवार्य हो जाएगी। उस मोड़ पर हाथियों के समुदाय से सीखना सार्थक होगा। क्योंकि ये शांत, विवेकपूर्ण दिग्गज अपने मातृसत्तात्मक अनुशासन और सामूहिक संवेदना से वह संतुलित संसार जीते हैं, जिसकी कल्पना हम केवल स्वप्नों में करते हैं।

अगली कड़ी में लबास्ना कैंपस और आईएएस प्रशिक्षण का उल्लेख समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह दिखाने के लिए महत्वपूर्ण है कि आधुनिक प्रशासनिक ढाँचों में प्रवेश करने वाली युवा पीढ़ी जब मेघालय के मातृवंशीय समाज जैसे विषयों का अध्ययन करती है, तो वह भारतीय समाज-व्यवस्था की विविधता और उसके वैकल्पिक मॉडल्स से रुबरू होती है। माया द्वारा मेघालय की मातृवंशीय प्रणाली पर किया गया प्रेजेंटेशन इस तथ्य को सामने लाता है कि भारतीय समाज में मातृसत्ता कोई सीमांत परिघटना नहीं, बल्कि ऐतिहासिक रूप से विकसित, संरचनात्मक रूप से संगठित और सामाजिक रूप से स्वीकृत धारा रही है। सोपान सर की परनानी थारवाड की अम्माची के अल्फा वूमेन होने की जानकारी नायर समाज की उस जटिल सामाजिक प्रणाली की ओर संकेत करती है, जिसमें वंश, संपत्ति, उत्तराधिकार और परिवार-रचना स्त्री-केंद्रित रही है।

उपन्यास की भावभूमि में विशाल जंगल, विराट हाथी, कुलमाता, खासी समाज, नायर समाज की कद्दावर महिलाएं अमिट छाप छोड़ती हैं, जिसके पदचिन्हों पर चलते हुए वह अपनी परिणीति पाता है। मायाविडु सोपान सर, माया की कहानी के माध्यम से लेखिका केरल की कला -संस्कृति- विरासत के गलियारों में, नायर समाज की उत्कृष्ट परंपराओं के आंगन में ले जाती है और यहीं मिलता है नायर समाज की उदात्ता विरासत का भव्य विराट परिचय। कलानिलयम की धरोहर अजीब से रोमांच से भर देती है। प्रकृति और परिवेश की मादकता को आत्मसात करता सोपान- माया के बीच पनपता प्रेम मातृसत्ता के बीच पल्लवित होता है।

नायर समाज का मातृवंशीय ढाँचा समय के साथ कैसे ढहता है, उपन्यास इसे किसी व्यक्तिगत कथा के बजाय एक सामाजिक-वैचारिक प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करता है। 'जिस समाज में माँ मुखिया वहाँ स्त्री की मर्जी सर्वोपरि, यानी वह यौनिक तौर पर भी स्वतन्त्र। वैवाहिक बन्धन यानी 'सम्बन्धम' जो कि नितान्त लचीला कि स्त्री जब चाहे त्याग दे, अपना ले। ऐसा क्यों हो! अब नायर पुरुष योद्धा नहीं रहे। नौकरियाँ कर रहे, किताबें लिख रहे, नेता बन रहे तो हम तो अब अपनी स्त्रियों को पवित्र नैतिकता के दायरे में और अपने कंट्रोल में रखेंगे।.....हिन्दू नायर परिवार के चौखटों को बदला गया.. यानी पितृसत्ता का आगमन हुआ।'[12] नायर समाज की मातृवंशीय परंपरा स्त्री-केंद्रित संपत्ति, पारिवारिक नेतृत्व और संबंधों की स्वायत्ताता का विशिष्ट मॉडल थी। औपनिवेशिक प्रभाव और पुरुषों में उत्पन्न नैतिक चिंता ने इस व्यवस्था को चुनौती दी, जिसके परिणामस्वरूप 1925 के 'नायर रेगुलेशन' द्वारा मैट्रिलिनी को कानूनी रूप से समाप्त कर पितृसत्ता का प्रभुत्व स्थापित किया गया। थारवडु के अवशेष आज भी इस परिवर्तन के साक्षी हैं। 1921 की राजा रवि वर्मा की पेंटिंग 'हेयर कम्स पापा!!' एक प्रतीक के रूप में सामने आती है, जो मातृसत्ता के विमर्श में परिवर्तन की ऐतिहासिक चेतावनी बनकर खड़ी होती है।

उपन्यास के क्रम में माइया मार्गरीटा वास्तव में भारतीय मातृवंशीय परंपरा की अंतिम जीवित कड़ी पर विमर्श है। यह अध्याय यह प्रश्न उठाता है कि क्या मातृसत्ता का अस्तित्व आधुनिकता और पूँजीवाद के दबावों के बीच शेष रह सकता है? मार्गरीटा की दृष्टि, उसकी स्पष्टता, परिवार की कुडु को अधिकार सौंपने का जतन इस विचार की ओर संकेत करता है कि मातृसत्ता केवल जन्मगत अधिकार नहीं, बल्कि जिम्मेदारियों और वैचारिक सजगता की प्रणाली है। इसी संदर्भ में नकुल-माइया संबंध भी किसी प्रेमकथा का रूप लेता है।

अपने प्रस्थान बिंदु में यह उपन्यास प्रकृति बनाम सभ्यता, मातृसत्ता बनाम पितृसत्ता, परंपरा बनाम आधुनिकता, समाज बनाम व्यक्ति का वैचारिक संलयन प्रस्तुत करता है। हाथी समाज का अध्ययन बताता है कि प्रभावी नेतृत्व आक्रामकता पर नहीं, बल्कि अनुभव, सहयोग और सामूहिक सुरक्षा पर आधारित होता है। उनका नेतृत्व कार्य-वितरण, संवेदनशीलता और समूह-एकजुटता पर टिका है, जिसमें सत्ता-संघर्ष या हिंसक प्रतिस्पर्धा का स्थान नहीं होता। 'हाथी सिखाते हैं नेतृत्व हमेशा आक्रामकता से नहीं होता है, क्योंकि यह नेतृत्व मादाएँ जो करती हैं। वहाँ अनुभव से आपको मुखिया पद मिलता है ना कि खून-खराबे, षड्यन्त्र से। काश हमने सीखा होता इनसे कि समाज की सत्ता मादाओं को दे दो।.. इन हथिनियों के लिए नर लड़ाई का कारण नहीं होते, वे आते हैं और चले जाते हैं, लेकिन ये सदा एक-दूसरे के साथ बनी रहती हैं। मैंने बहुत समझदार कुलमाताओं को देखा है, बड़े-बड़े अकाल, भीषण बाढ़ों से झुण्ड को बचाकर ले जाते हुए।'[13] अंततः उपन्यास यह इंगित करता कि मातृसत्ता की अवधारणा किसी एक समुदाय या भू-प्रदेश तक सीमित नहीं रही। तथा इसके अंतर्गत मानीखेज उद्देश्य के साथ उसी ठसक से नये सवाल जवाब मिलते रहे है।

निष्कर्ष - त्रिमाया समकालीन हिन्दी साहित्य में एक विशिष्ट उपन्यास के रूप में स्थापित होता है, क्योंकि यह मातृसत्तात्मक समाजों की अंतर्निहित संरचनाओं, प्रकृतिद्दमानव संबंधों और स्त्री-केन्द्रित सांस्कृतिक परंपराओं को गहन अध्ययनशील दृष्टि से प्रस्तुत करता है। उपन्यास की संरचना अल्फा हथिनी से अल्फा वूमेन तक के संक्रमण को जिस रूप में सामने लाती है, वह इस तथ्य को रेखांकित करता है कि मातृसत्ता केवल ऐतिहासिक संदर्भ भर नहीं, बल्कि सामाजिक संगठन, नेतृत्व और स्मृति की एक निरंतर प्रणाली है। इसी प्रकार मार्गरिट से त्रिमाया तक की वैचारिक यात्रा में स्त्री-अनुभव, सांस्कृतिक उत्तराधिकार और सामुदायिक शक्ति का विकास स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

भाषा की सृजनात्मकता, शिल्प की विविधता और सांस्कृतिक विश्लेषण की गहराई इस उपन्यास को साधारण कथा से ऊपर उठाकर एक महत्वपूर्ण वैचारिक पाठ बनाती है। यह उपन्यास पाठक से सक्रिय सहभागिता की अपेक्षा करता है सातत्यपूर्ण पढ़ने, चिंतन और तुलना के द्वारा ही इसके सामाजिक, नृवंशीय और पारिस्थितिक आयाम पूर्ण रूप से समझ में आते हैं।

इस दृष्टि से त्रिमाया मातृसत्ता, इको-फेमिनिज्म और भारतीय समाज की वैकल्पिक व्यवस्था-परंपराओं पर एक सशक्त साहित्यिक दस्तावेज के रूप में उभरता है। यह न केवल पारंपरिक धारणाओं को चुनौती देता है, बल्कि यह भी संकेत करता है कि स्त्री-केंद्रित समाज-व्यवस्थाएँ भारतीय संस्कृति में गहरे निहित रही हैं। अत: यह उपन्यास समकालीन शोध, सांस्कृतिक अध्ययन और स्त्री-अधिकार विमर्श के लिए एक महत्तवपूर्ण संदर्भ-ग्रंथ का रूप धारण कर लेता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. एंगल्स, फ्रेडरिक, (1960), परिवार, निजी संपत्ति और राज्यों की उत्पत्ति, ई-पुस्तकालय, पृष्ठ 72
2. लर्नर, गेर्डा (1986), द क्रिएशन ऑफ पैट्रीआर्की, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, पृष्ठ-31
3. कुलश्रेष्ठ, मनीषा (2025), त्रिमाया, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 09
4. वही, पृष्ठ 73
5. वही, पृष्ठ 209
6. गौड़, पं. रामस्वरुप शर्मा, व्याख्याकार, (1997), अथर्ववेद संहिता, श्लोक 12 भाग-2, कांड-12, भूमि सूक्त, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, पृष्ठ 13
7. प्रमिला, के. पी. (2015), स्त्री अध्ययन की बुनियाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-69
8. जे. वॉरेन, कैरेन, इकोफेमिनिज्म: हिस्टोरिक एंड इंटरनेशनल इवोल्यूशन, पृष्ठ 206
9. कुलश्रेष्ठ, मनीषा (2025), त्रिमाया, प्राक्कथन से, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 08
10. कुलश्रेष्ठ, मनीषा (2025), त्रिमाया, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 14
11. वही, पृष्ठ 229
12. वही, पृष्ठ 99-100
13. वही, पृष्ठ 231

****